समयसार, १६० गाथा का भावार्थ। क्या कहते हैं? **यहाँ भी 'ज्ञान' शब्द से आत्मा समझना चाहिए।** ज्ञान का कहा न? ज्ञान का समकित, ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान का चारित्र। **यहाँ भी 'ज्ञान'..** अर्थात् **आत्मा..** त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, वह आत्मा। **ज्ञान अर्थात् आत्मद्रव्य स्वभाव से तो सबको देखनेवाला है..** यह पाठ में है न? **'सव्वणाण'** इसका स्वभाव तो सम्पूर्ण अपने को जाने, तब यह विश्व को जाने, ऐसा इसका स्वभाव है। स्वयं ज्ञायक चैतन्यस्वरूप है। वह सर्व को अपने स्वरूप को सर्व को जानना, वह जाने तब सर्व को-पर को भी जानना, उसमें आ जाता है। आहाहा!

यह **आत्मद्रव्य..** वस्तु **स्वभाव से तो सबको जानने-देखनेवाला है..** अर्थात् यहाँ सर्व को देखनेवाला-जाननेवाला है, ऐसा कहकर उसका स्वभाव सर्व को जानना-देखना, इस स्वरूप है, (ऐसा कहना है)। इस देह में प्रभु आत्मा (विराजता है), उसका

स्वभाव तो सम्पूर्ण सर्व को-सबको जानना-देखना ऐसा उसका स्वभाव है। ज्ञातादृष्टा पूर्णरूप से हो, यह तो उसका स्वभाव है। आहाहा! किसी का करे, यह बात यहाँ है नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि अनादि काल से **स्वयं अपराधी होने के कारण..** यह शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के शुभभाव, वे मेरे हैं—ऐसी मान्यता (जो करता है), वह अपराधी है। आहाहा! वह मिथ्यादृष्टि, स्वरूप का अपराधी है। आहाहा! स्वरूप में वे पुण्य-पाप के भाव उसमें नहीं हैं और उसके नहीं हैं। उसमें नहीं, उसके नहीं। वह तो पर्याय में पुद्गल के निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न होते होने से, उन्हें पुद्गलस्वभावी कहा है। आहाहा! काम बहुत (कठिन है)।

यहाँ (कहते हैं कि) अनादि काल से स्वयं स्वयं का अपराधी होने से। कर्म के कारण नहीं। सर्व को जाननेवाला-देखनेवाला इसका स्वभाव होने पर भी अपने अपराध से स्वयं ही अल्पज्ञपने रागादि में रहकर और यही मेरा स्वरूप है, ऐसा मानता है। वह स्वयं का अपराध है। आहाहा! पाठ में 'कर्मरज' (शब्द था)। **कर्म रज आच्छाद से** (ऐसा है)। इसका अर्थ आचार्य ने किया कि स्वयं का अपराध है। कर्मरज कहने से स्वयं का स्वरूप जो चिदानन्द, ज्ञानानन्द है, उसे न जानकर उस राग को और पुण्य को जानने में रुक गया, वह इसका अपराध है। आहाहा! इस पुण्य परिणाम के कर्तापने में रुकना और पुण्य-परिणाम में जानने में रुकना, यह इसका अपराध है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! अब ऐसी बातें!

इसलिए **अनादि से स्वयं अपराधी होने के कारण कर्मों से आच्छादित है,..** वास्तव में यह पुण्य और पाप के भाव मेरे हैं, (ऐसा मानता है), उसके कारण यह ढँक गया है। इसका स्वरूप ढँक गया है। इस स्वरूप में नहीं और इसकी जाति नहीं, तथापि यह पुण्य और पाप के भाव अपने मानकर, स्वरूप का अज्ञान करके अपने अपराध से ही स्वयं ढँक गया है। आहाहा!

अपराधी होने के कारण कर्मों से.. अर्थात् पुण्य-पाप के भाव। उनके द्वारा ढँक गया है। अर्थात्? इसे अपना स्वरूप शुद्ध है, वह देखना चाहिए, उसे जानना चाहिए, उसे देखना चाहिए, ऐसा न करके इस पुण्य के परिणाम, पाप के भाव को इतने में जानने में

रुका, यह इसका अपराध है। सर्व को जानने-देखनेवाला, यह राग को जानने में रुका, यह इसका अपराध है। आहाहा! ऐसा मार्ग!

वीतरागदेव जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ की वाणी यह है। सन्त इस प्रभु की वाणीरूप से बताते हैं। आहाहा! प्रभु! तू सर्व को जानने-देखनेवाला है न! इस सर्व को जानने-देखनेवाले पर तेरी दृष्टि नहीं है, इसलिए पुण्य और पाप के परिणाम जो बन्धस्वरूप है, (उन्हें जानने में रुक गया है)। अबन्धस्वरूप तो सर्व को जाननेवाला-देखनेवाला है, वह अबद्धस्वरूप है परन्तु उस पर तेरी दृष्टि नहीं होने से पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव को ही, उतने को ही ज्ञेय करके ज्ञान में वहाँ रुक गया है। आहाहा! उतने ही ज्ञेय का ज्ञान करके रुक गया है। नहीं तो सर्व को जाने। अपना स्वरूप सम्पूर्ण जाने तो सर्व ज्ञेय को जाने। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

आत्मा स्वयं चैतन्यस्वभाव सर्व को जानने-देखने का ही इसका स्वभाव है परन्तु वह कब? कि स्वयं अपने को देखे और जाने, तब वह स्वभाव जानने-देखने का है, ऐसा इसके अनुभव में आवे, परन्तु उस पर तो अनादि से नजर नहीं है। इसकी नजर वर्तमान दया, व्रत, भक्ति और पूजा करता हूँ—ऐसा जो विकारी भाव, उतने को ज्ञेय बनाकर और ज्ञान का विषय इतना है और ज्ञान इतना है... आहाहा! (ऐसा माना), यह इसका अपराध है। समझ में आया? आहाहा!

बापू! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! जिनेश्वरदेव का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। अभी तो बाहर की स्थूल बातों में सब रुक गये हैं। यह व्रत किये और तप किये और अपवास किये भक्तियाँ की और पूजा की और यात्रायें की। आहाहा! यह तो सब राग की क्रियाएँ हैं। (इतना ही) ज्ञेय है, ऐसा जानकर वहाँ इतने में ज्ञान रुक गया। आहाहा! यह इसका अपना अपराध है; कर्म के कारण नहीं है। कर्म ने इसे वहाँ राग में रोका है, ऐसा नहीं है। अकेले पुण्य-पाप के भाव में ज्ञान रुका है, वह कर्म के कारण है, ज्ञानावरणीय कर्म के कारण वह ज्ञान वहाँ रुक गया है, ऐसा नहीं है।

सर्व को जाननेवाला-देखनेवाला प्रभु.. पाठ ऐसा लिया है न! देखो न! '**सव्वणाणदरिसी**' आहाहा! वह तो सर्व को जानना-देखना, वह इसका स्वरूप है। उस

स्वभाव पर नजर न रखकर, अनादि से वह प्रभु सर्व को जाननेवाला-देखनेवाला, सर्व को जाननेवाला-देखनेवाला—ऐसा स्वभाव है, उस पर नजर न करके, वर्तमानमात्र पुण्य और पाप के भाव (होते हैं), उसमें मेरा यह कर्तव्य है और यह मैं हूँ, यह मेरा आचरण है-ऐसा वहाँ रुका, वही उसका अपराध है। समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात है परन्तु यह तो सूक्ष्म रहस्य है। समयसार अर्थात् भगवान की वाणी बहुत गहरी! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : अखण्ड प्रतिभास चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : अखण्ड प्रतिभास चाहिए। वह नहीं है, इसलिए खण्ड में रुका, वह इसका अपराध है। है अबद्धस्पृष्ट। यह तो आ गया है न पहले! मुक्तस्वरूप है। आहाहा! अबद्धस्पृष्ट है। आहाहा! ऐसा होने पर भी इसे.. इसे.. इसे जानता नहीं। इसे जाने, तब तो यह सर्वज्ञ—सर्वदर्शी स्वभाव है। इसलिए उस राग में रुककर उसे जानने में रुके, इतना (स्वरूप) नहीं है। आहाहा!

अपने भगवान आत्मा का स्वभाव, सब आत्मा भगवानस्वरूप है, उसका स्वभाव ही सब पूर्ण अपने को जानना और पूर्ण अपने को जाने, इससे पर जानने में उसमें आ जाता है। समझ में आया?

अपने अपराध से आच्छादित है, ढँक गया है। आहाहा! **इसलिए वह अपने सम्पूर्ण स्वरूप को..** देखा? इसलिए वह अपने सम्पूर्ण स्वरूप को **नहीं जानता;..** ऐसा लिया है। भगवान आत्मा सम्पूर्ण इसका स्वरूप तो जानना-देखना है। यह जानना-देखना इसका स्वरूप है, उसे यह नहीं जानता। अनादि से दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा आदि के भाव—राग को जानने में रुक गया। इसका जानने का स्वभाव तो अपने में अपना पूर्ण स्वरूप है, उसे जानने का स्वभाव है और उस पूर्ण को जानने से दूसरे सब जानने में आ जाते हैं। परन्तु ऐसा न जानकर... आहाहा! यह शुभ और अशुभभाव, पुण्य और पाप के भाव में रुककर, उतने को ज्ञेय बनाकर, उतना ही ज्ञान मेरा, उसे जाननेवाला ज्ञान उतना मैं... आहाहा! और यह राग है, वह मेरा स्वरूप है; यह राग मेरा कर्तव्य है—ऐसा अपने अपराध से वहाँ रुक गया है। आहाहा! कठिन बात है, बापू! वीतरागमार्ग (बहुत सूक्ष्म है)।

क्या कहा? देखो! **इसलिए वह अपने सम्पूर्ण स्वरूप को नहीं जानता;..** ऐसा

कहा न ? आहाहा ! यह राग—पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव, वह पुण्य है—राग है। उसे जानने में रुकना और वे मेरे हैं, ऐसा मानकर वहाँ रुका है। आहाहा ! **इसलिए वह अपने सम्पूर्ण स्वरूप को नहीं जानता ;..** आहाहा ! अब ऐसी बात पकड़ना कब ? वाड़ा बंधी बाँधकर (उसमें) पड़कर जिन्दगी चली जाती है। आहाहा ! भगवान तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं कि प्रभु ! तू तो सर्व को तेरे पूर्ण स्वरूप को जाननेवाला है न ! इस सम्पूर्ण को जाननेवाला है, अर्थात् सर्व विश्व को जाननेवाला है, ऐसा। आहाहा ! विश्व में स्वयं और पर दोनों आ गये न ! आहाहा !

यह भगवान आत्मा अन्दर चैतन्य सर्वज्ञस्वरूपी है। सर्वदर्शी, सर्वज्ञ कहा न ! पाठ में ऐसा आया न ? '**सव्वणाणदरिसी**' यह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी इसका स्वभाव है। भगवान सर्वज्ञ और सर्वदर्शी परमात्मा अरिहन्त हुए, वे कहाँ से हुए ? वह (दशा) कहीं बाहर से आती है ? आहाहा ! यह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी उसकी शक्ति, उसका सत्व, उसका स्वभाव है। आहाहा ! उसे सम्पूर्णरूप से, जो अपना स्वरूप है, उसे जानना चाहिए... आहाहा ! उस अपने सम्पूर्ण स्वरूप को नहीं जानता। उसे जानना चाहिए, उसे नहीं जानता। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, प्रभु !

वीतराग परमेश्वर का हुकम, उनकी आज्ञा कोई अलग प्रकार की है। अभी तो सब गड़बड़-गड़बड़ (चलती है)। पूरा रास्ता विपरीतता लाईन में चढ़ गया है। आहाहा !

क्या कहा ? यह सर्व को देखनेवाले-जाननेवाले का अर्थ—अपने सम्पूर्ण स्वरूप को जानना-देखना, वह इसका स्वरूप है। आहाहा ! उसे न देखकर, उस पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव हों, वहाँ ज्ञान की पर्याय को रोककर... वस्तु तो वस्तु है, (परन्तु) पर्याय को वहाँ रोककर। आहाहा !

मुमुक्षु : (अपने भगवान को) देखने की विधि आपने बतायी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है। भगवान तीन लोक के नाथ पुकार करते हैं ! आहाहा ! सीमन्धरस्वामी भगवान महाविदेह में विराजते हैं, उनकी यह वाणी है। आहाहा ! प्रभु ! विराजते हैं, पाँच सौ धनुष की देह है, करोड़पूर्व की आयुष्य है। बीसवें मुनिसुव्रत भगवान के वाड़ा में से स्वयं केवलज्ञान पाये हैं। उस काल में वहाँ केवलज्ञान पाये हैं। अरबों वर्षों

से हैं और अभी अरबों वर्ष रहनेवाले हैं। आगामी चौबीसी के तेरहवें तीर्थंकर यहाँ होंगे, तब वे अरिहन्त पद से छूटकर सिद्धपद को (प्राप्त) होंगे। अभी णमो अरिहंताणं में हैं। महावीर आदि परमात्मा णमो सिद्धाणं में हैं। अभी णमो अरिहंताणं में नहीं हैं। यहाँ थे, तब अरिहंताणं में थे। अभी प्रभु णमो सिद्धाणं में हैं। आहाहा!

अरिहन्त भगवान विराजते हैं, वे अभी सिद्धपद में नहीं हैं, अभी वे अरिहन्त पद में हैं। चार कर्म बाकी, चार कर्मों का छेदन किया। केवलज्ञान हुआ परन्तु अभी चार अघातिकर्म बाकी हैं। आहाहा! उन भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्यदेव गये थे। अरे रे! (लोगों को) यह भी विश्वास नहीं आता।

उसमें विचार आया है। विद्यानन्दजी की ओर से समयसार (बाहर) प्रकाशित हुआ है न? समयसार। आज और किसी ने वहाँ रखा था। उसमें इन (कुन्दकुन्दाचार्यदेव के) महाविदेह में गये, यह विश्वसनीय नहीं है, ऐसा (लिखा है)। अरर! आचार्यों ने कहा, जयसेनाचार्यदेव ने कहा। महामुनि! टीका में (कहा है)। जयसेनाचार्यदेव की टीका है। पंचास्तिकाय में, इसमें नहीं। पंचास्तिकाय की टीका में है कि कुन्दकुन्दाचार्यदेव संवत् ४९ में नग्न मुनि, दिगम्बर मुनि भगवान के पास गये थे। देवसेनाचार्यदेव (कहते हैं कि) भगवान के पास गये थे और यह यदि वहाँ से ऐसा मार्ग न लावे तो हम मुनिपना कहाँ से समझते? आहाहा! अरे रे!

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि अपना स्वभाव तो सर्व को जानना-देखना है—ऐसा होने पर भी, अपना अपराध अर्थात् अल्पज्ञान को राग में रोककर, इसने वहाँ मिथ्यात्व का अपराध किया है। आहाहा! इस मिथ्यात्व के अपराध द्वारा सर्व को जानने-देखने का (स्वरूप), वह आच्छादित हो गया है। यह बन्धस्वरूप की व्याख्या चलती है न! ढँक गया है, यह पहली तीन गाथाओं में आया था। यह तो (कहते हैं) बन्धस्वरूप ही है, पुण्य-पाप वह बन्धस्वरूप है, इसलिए अबन्धस्वरूप ऐसा भगवान सर्व को जाननेवाले-देखनेवाले को ही न जानकर... आहाहा! अपने अपराध से मात्र यह दया, दान, व्रत, भक्ति और काम-क्रोध के शुभाशुभभाव को जानकर, उसे हो गया कि मानो ओहोहो! हमने मानो बहुत जाना! ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह बन्धभाव है। वह अबन्धभाव से विरुद्ध भाव है। बन्धभावरूप से, हों! मोक्ष के मार्ग के परिणाम से विरुद्ध भाव (है, ऐसा) आगे की तीन

गाथाओं में आयेगा। यह तो अबन्ध से विरुद्ध भाव बन्ध है, इतनी बात है। समझ में आया?

पहली तीन गाथाओं में ऐसा आया था कि भगवान आत्मा का जो मोक्षमार्ग-आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसे मिथ्यात्वादि ने ढँक दिया है। ऐसा आया था, और इसमें ऐसा आया कि भगवान आत्मा अबद्धस्वरूप सर्वज्ञ-सर्वदर्शी है, तथापि रागादि के बन्धस्वरूप में रुक गया है। इसलिए वह बन्धस्वरूप है, इसलिए वह निषेध किया गया है। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा के परिणाम हों, परन्तु हैं वे बन्धस्वरूप - राग। आहाहा! कठिन पड़े, भाई! लोगों को बेचारों को, क्या करे? कभी जिन्दगी में सुना नहीं और यह उपदेश होता नहीं। उपदेश तो यह करो... यह करो... यह करो... पालीताणा की यात्रा करो, गिरनार की करो, सम्मेदशिखर की करो, जाओ! परन्तु यह तीन लोक का नाथ है, इसकी तो यात्रा एक बार कर! ऐसी पर की यात्राएँ तो अनन्त बार की हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा! **अपने सम्पूर्ण स्वरूप को नहीं जानता;..** आहाहा! ऐसा कहा, देखा? **यों अज्ञानदशा में रह रहा है।** अपना जानना-देखना सम्पूर्ण स्वरूप है, उसे नहीं जानता नहीं; इसलिए उस राग को अकेले को जानने में रूककर अज्ञान में वर्तता है। **इस प्रकार केवलज्ञानस्वरूप अथवा मुक्तस्वरूप आत्मा..** देखा? आहा! वहाँ ये रागादि बन्धस्वरूप है, (ऐसा कहा न)! यहाँ (आत्मा) मुक्तस्वरूप है, आहा! यहाँ ज्ञान की पर्याय मात्र राग में रुकी है, जबकि उसका स्वरूप केवलज्ञान, पूरा केवलज्ञान है। आहाहा! श्रीमद् ने कहा है कि समकित होने पर श्रद्धा में केवलज्ञान प्रगट होता है। ऐसे वस्तु थी, परन्तु उसे श्रद्धा में न आयी, तब तक क्या? आहाहा! समझ में आया?

एक यह प्रश्न आया था। अमूर्त का आया न? अमूर्त का! कर्म के छेदने से फिर अमूर्तपना प्रगट होता है। उसका अर्थ यह कि अमूर्तपना तो है, परन्तु इसकी दृष्टि में न आवे, तब तक वह अमूर्तपना इसे नहीं है। ऐसी व्याख्या आती है न! इसमें अमूर्त की व्याख्या है, देखो! कितना बोल है यह? अमूर्त। २१ में आया है, २०... २०! २० है। **कर्मबन्ध के अभाव से व्यक्त किये गये, सहज, स्पर्शादिशून्य (-स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से रहित) ऐसे आत्म-प्रदेशस्वरूप अमूर्तत्वशक्ति।** इसलिए लिया कि अमूर्तशक्ति तो है परन्तु उसकी प्रतीति में आ जाए, तब (उसके लिए) अमूर्तशक्ति है। राग से भिन्न पड़कर, बन्ध से भिन्न पड़कर, अबन्ध जब शक्ति तो अमूर्त है, तब उसे अमूर्तशक्ति की पर्याय में

प्रगटता हुई, उसे यह अमूर्त है, ऐसा जानने में आया। अज्ञानी को तो राग और पुण्य और मूर्त हूँ, ऐसा अनादि से मानता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! बहुत गम्भीर है।

यहाँ तो कर्म के अभाव से व्यक्त किये गये, ऐसा कहा न? **सहज, स्पर्शादिशून्य.. ऐसे आत्म-प्रदेशस्वरूप अमूर्तत्वशक्ति।** आहाहा! अर्थात् जिसे अन्दर में राग की एकता टूटकर स्वरूप का ज्ञान हुआ है, उसे अमूर्तशक्ति है, ऐसी उसे प्रतीति हुई। आहाहा! भगवान तो त्रिकाल अमूर्त ही है। भगवान तो त्रिकाल कारणपरमात्मा है परन्तु कारणपरमात्मा की दृष्टि हुए बिना 'यह है' उसे राग की एकता टूटकर स्वभाव की एकता करे, तब उसे कारण परमात्मा है, ऐसा प्रतीति में / दृष्टि में आया। आहाहा!

यह तो त्रिभुवन वारिया ने प्रश्न किया था न! कि कारणपरमात्मा है, तब तो कार्य आना चाहिए। सब कारणपरमात्मा अन्दर वस्तु भगवानस्वरूप है और कार्य तो आता नहीं। आहाहा! ऐसा प्रश्न किया था। परन्तु भाई! कारणपरमात्मा है... बापू! मार्ग प्रभु! (क्या कहें)? यह कारणपरमात्मा पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... अनन्त गुण का पिण्ड पूर्ण है। आहाहा! ऐसी जिसे स्वसन्मुख होकर दृष्टि हुई है, उसे कारणपरमात्मा है। उसे कार्य समकित हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया? अरे रे! अब ऐसी बातें! जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! सत्य को भगवान ने कहा, वह सत्य एक ओर पड़ा रहता है और बाहर में मिथ्या ढोंग करके जिन्दगी (पूरी करते हैं)। आहाहा!

परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव का यह पुकार है, प्रभु! आहाहा! तू है तो कारणपरमात्मा। परमाणु को कारणपरमाणु कहा है न! नियमसार में (कहा है)। आहाहा! परन्तु वह वस्तु तो है, वह त्रिकाल आनन्दकन्द अबद्ध है, मुक्तस्वरूप है। यहाँ आया न? **केवलज्ञानस्वरूप अथवा मुक्तस्वरूप आत्मा..** है। है तो ऐसा यह त्रिकाल। वस्तु को आवरण नहीं है, वस्तु में विपरीतता नहीं है, वस्तु में हीनता नहीं है। आहाहा! परन्तु कर्म पुण्य और पाप के भाव में रुका हुआ, उनसे लिप्त होने से... आहाहा! वह शुभ और अशुभभाव जो मलिन भाव है। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का, यात्रा का हो परन्तु वह राग मलिन है, रागभाव है। यह दुनिया को खबर नहीं है। दुनिया माने (कि) यह धर्म है, (ऐसा मानती है)। आहाहा!

धर्म तो अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान को राग से भिन्न अपना पूर्ण स्वरूप है, ऐसा

जब जाने और माने और अनुभव करे, तब उसे धर्म होता है। आहाहा! उसके बदले यह दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा के परिणाम में ज्ञान रूका हुआ (रहता है), इसलिए उस पूर्ण को जानता नहीं। अल्प को जानने में रुकने से पूर्ण को जानता नहीं, यही इसका अपराध है। आहाहा! अब ऐसा पकड़ में नहीं आवे, फिर विरोध करे।

मुमुक्षु : बराबर सुने, समझे नहीं और विरोध किया करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? भाई! 'जिसमें जितनी बुद्धि है, इतनो दिये बताय; बाँको बुरौ न मानिये और कहाँ से लाये?' कहाँ से लाये? भाई! आहाहा!

अन्दर महाप्रभु विराजता है। तीनों काल में चैतन्यद्रव्य तो निरावरण पड़ा है। आहाहा! उसे राग में रुककर आवरण में—यह भाव आवरण में डाल दिया। पर्याय में, पर्याय में। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा आदि का भाव राग है। उसमें रुक गया, उस मुक्तस्वरूप को इसने ढँक दिया। केवलज्ञानस्वरूप प्रभु अन्दर है, उसका इसने अनादर किया है। ऐसी बातें हैं। दुनिया पागल माने ऐसा है। अरे रे! पूरी बात (बदल गयी)। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले मन्द करे, फिर (शुद्ध में आ जाए)।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्द करे, वह अज्ञान है। मन्द है, वह करना ही नहीं। मन्द है वह राग है, जहर है। उसे करे, फिर (धर्म होता है, वह तो) लहसुन खाये, फिर कस्तूरी का डकार आवे, तो यह शुभभाव करे तो इसे धर्म हो, (उसके जैसी बात है)। बापू! मार्ग अलग है, प्रभु! क्या करें? आहाहा! प्रभु का भरत में विरह पड़ा, भगवान विराजते हैं वहाँ, परन्तु वाणी का विरह नहीं है। वाणी तो भगवान की जो है, वह वाणी है। आहाहा!

यहाँ तो सम्पूर्ण जाननेवाला, वह अपने सम्पूर्ण (स्वरूप को) न जानकर अपूर्ण अथवा विपरीत पर्याय को जानने में रुका, वह इसका अपराध है। आहाहा! वह इसका मिथ्यात्व का अपराध है। आहाहा! बहुत कठिन बात है, बापू! आहाहा!

इस प्रकार केवलज्ञानस्वरूप अथवा मुक्तस्वरूप आत्मा.. अपने विकारी परिणाम **से लिप्त होने से..** आहाहा! लिप्त होने से (अर्थात्) मिथ्यात्वभाव से ढँका हुआ होने से **अज्ञानरूप अथवा बद्धरूप वर्तता है,..** स्वरूप के अज्ञानरूप और राग के बद्धरूप में वर्तता है। आहाहा! **इसलिए यह निश्चित हुआ कि कर्म स्वयं ही बन्धस्वरूप हैं।**

पुण्य और पाप के भाव, प्रभु! वे बन्धस्वरूप हैं। प्रभु! तू तो अबद्धस्वरूप पूरा भिन्न है। आहाहा! अरे! कैसे जँचे? अभी मैं अबद्धस्वरूप हूँ। भगवान! तेरा स्वरूप तो अबद्धस्वरूप ही है। अबद्ध न हो तो पर्याय में अबद्धपना / मुक्तपना कहाँ से आयेगा? भाई! कोई बाहर से नहीं आता। आहाहा!

मुमुक्षु : एकाएक किस प्रकार से हो जाएगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकाएक यहाँ तो टूट पड़े ऐसा है। एक समय का अन्तर है। एक समय में राग को देखनेवाला एकता रोकी है, वह गुलांट खाकर आत्मा को देखे तो एक समय का अन्तर है।

मुमुक्षु : स्व-परप्रकाशकपना तो है, स्व-परप्रकाशक तो था न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह है। वह स्वयं अपने को ही जाना नहीं। ऐसा कहा न? उस पर को, राग को, दया को जानने में रुक गया। वह स्व को जानने में जाए, उसे एक समय की बात है। आहाहा! क्या हो? मार्ग तो यह है, प्रभु! दुनिया फिर साधु के नाम से, पण्डितों के नाम से चाहे जो गड़बड़ी चलावे, वह मार्ग वीतराग का नहीं है, बापू! आहाहा!

अतः कर्मों का निषेध किया गया है। कर्म अर्थात् पुण्य-पाप। पुण्य-पाप बन्ध -स्वरूप है, शुभ-अशुभभाव बन्धस्वरूप है। पहले में ऐसा कहा था कि पुण्य-पाप के भाव मेरे, ऐसा मानकर सम्यग्दर्शन को उत्पन्न होने नहीं देता, ढाँक दिया, घात किया, घात किया। इसमें कहा कि वह बन्धस्वरूप है। आहाहा!

अब तीसरा बोल। दो बोल गये। ये दो बोल। कौन से? कि एक तो भगवान आत्मा, आत्मा का समकित, आत्मा का ज्ञान और आत्मा का चारित्र, उनका मिथ्यात्वभाव से घात होता है, उनका उनमें घात होता है। पुण्य-परिणाम मेरे, ऐसे मिथ्यात्व से समकित उत्पन्न नहीं होता, उसे घात करते हैं, (ऐसा कहा)। ये रागादि हैं, उन्हें अपना मानने से, राग बन्धस्वरूप है, उसे अबन्धस्वरूप की दृष्टि न करके बन्ध में है, बन्धस्वरूप है, इसलिए निषेध है। अब तीसरे में (कहते हैं), ये भाव समकितदर्शन, ज्ञान, चारित्र से विरुद्ध भाव है। आहाहा! ये तीनों मिथ्यात्व—पुण्य में धर्म है, दया, दान, व्रत, भक्ति में धर्म है, ऐसा मिथ्यात्वभाव। वह मिथ्यात्वभाव, समकित भाव से विरुद्ध है। यह तीसरे बोल में है।

गाथा–१६१–१६३

अथ कर्मणो मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वं दर्शयति –

सम्मत्तपडिणिबद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठि त्ति णादव्वो।।१६१।।

णाणस्स पडिणिबद्धं अण्णाणं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णादव्वो।।१६२।।

चारित्तपडिणिबद्धं कसायं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णादव्वो।।१६३।।

सम्यक्त्वप्रतिनिबद्धं मिथ्यात्वं जिनवरैः परिकथितम्।
तस्योदयेन जीवो मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः।।१६१।।

ज्ञानस्य प्रतिनिबद्धं अज्ञानं जिनवरैः परिकथितम्।
तस्योदयेन जीवोऽज्ञानी भवति ज्ञातव्यः।।१६२।।

चारित्रप्रतिनिबद्धः कषायो जिनवरैः परिकथितः।
तस्योदयेन जीवोऽचारित्रो भवति ज्ञातव्यः।।१६३।।

सम्यक्त्वस्य मोक्षहेतोः स्वभावस्य प्रतिबन्धकं किल मिथ्यात्वं, तत्तु स्वयं कर्मैव, तदुदयादेव ज्ञानस्य मिथ्यादृष्टित्वम्।

ज्ञानस्य मोक्षहेतोः स्वभावस्य प्रतिबन्धकं किलाज्ञानं, तत्तु स्वयं कर्मैव, तदुदयादेव ज्ञानस्याज्ञानित्वम्।

चारित्रस्य मोक्षहेतोः स्वभावस्य प्रतिबन्धकः किल कषायः, स तु स्वयं कर्मैव, तदुदयादेव ज्ञानस्याचारित्रत्वम्।

अतः स्वयं मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्कर्म प्रतिषिद्धम्।।१६१–१६३।।

अब, यह बतलाते हैं कि कर्म मोक्ष के कारण के तिरोधायिभावस्वरूप (अर्थात् मिथ्यात्वादि भावस्वरूप) हैं:-

सम्यक्त्वप्रतिबन्धक करम, मिथ्यात्व जिनवर ने कहा।
उसके उदय से जीव मिथ्यात्वी बने यह जानना।।१६१।।

त्यों ज्ञानप्रतिबन्धक करम, अज्ञान जिनवर ने कहा।
उसके उदय से जीव अज्ञानी बने यह जानना।।१६२।।

चारित्रप्रतिबन्धक करम, जिनने कषायों को कहा।
उसके उदय से जीव चारितहीन हो यह जानना।।१६३।।

गाथार्थ : [सम्यक्त्वप्रतिनिबद्धं] सम्यक्त्व को रोकनेवाला [मिथ्यात्वं] मिथ्यात्व है, ऐसा [जिनवरैः] जिनवरों ने [परिकथितम्] कहा है; [तस्य उदयेन] उसके उदय से [जीवः] जीव [मिथ्यादृष्टिः] मिथ्यादृष्टि होता है, [इति ज्ञातव्यः] ऐसा जानना चाहिए। [ज्ञानस्य प्रतिनिबद्धं] ज्ञान को रोकनेवाला [अज्ञानं] अज्ञान है, ऐसा [जिनवरैः] जिनवरों ने [परिकथितम्] कहा है; [तस्य उदयेन] उसके उदय से [जीवः] जीव [अज्ञानी] अज्ञानी [भवति] होता है, [ज्ञातव्यः] ऐसा जानना चाहिए। [चारित्रप्रतिनिबद्धः] चारित्र को रोकनेवाला [कषायः] कषाय है, ऐसा [जिनवरैः] जिनवरों ने [परिकथितः] कहा है; [तस्य उदयेन] उसके उदय से [जीवः] जीव [अचारित्रः] अचारित्रवान [भवति] होता है, [ज्ञातव्यः] ऐसा जानना चाहिए।

टीका : सम्यक्त्व जो कि मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है, उसे रोकनेवाला मिथ्यात्व है; वह (मिथ्यात्व) तो स्वयं कर्म ही है, उसके उदय से ही ज्ञान के मिथ्यादृष्टिपना होता है। ज्ञान जो कि मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है, उसे रोकनेवाला अज्ञान है; वह तो स्वयं कर्म ही है, उसके उदय से ही ज्ञान के अज्ञानीपना होता है। चारित्र जो कि मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है, उसे रोकनेवाली कषाय है; वह तो स्वयं कर्म ही है, उसके उदय से ही ज्ञान के अचारित्रपना होता है। इसलिए, स्वयं मोक्ष के कारण का तिरोधायिभावस्वरूप होने से कर्म का निषेध किया गया है।

भावार्थ : सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्ष के कारणरूप भाव हैं, उनसे विपरीत मिथ्यात्वादि भाव हैं; कर्म मिथ्यात्वादि भाव-स्वरूप हैं। इस प्रकार कर्म, मोक्ष के कारणभूत भावों से विपरीत भावस्वरूप हैं।

पहले तीन गाथाओं में कहा था कि कर्म मोक्ष के कारणरूप भावों का– सम्यक्त्वादि का घातक है। बाद की एक गाथा में यह कहा है कि कर्म स्वयं ही बन्धस्वरूप है। और इन अन्तिम तीन गाथाओं में कहा है कि कर्म, मोक्ष के कारणरूप भावों से विरोधी भावस्वरूप है–मिथ्यात्वादिस्वरूप है। इस प्रकार यह बताया है कि कर्म, मोक्ष के कारण का घातक है, बन्धस्वरूप है और बन्ध का कारणस्वरूप है, इसलिए निषिद्ध है।

अशुभ कर्म तो मोक्ष का कारण है ही नहीं, प्रत्युत बाधक ही है; इसलिए निषिद्ध ही है; परन्तु शुभकर्म भी कर्म सामान्य में आ जाता है, इसलिए वह भी बाधक ही है, इसलिए निषिद्ध ही है, ऐसा समझना चाहिए।

गाथा - १६१-१६३ पर प्रवचन

अब, कर्म मोक्ष के कारण के तिरोधायिभावस्वरूप (अर्थात् मिथ्यात्वादि भावस्वरूप) हैं:– देखा ? सम्यग्दर्शन के बदले मिथ्यात्वादि भाव (होते हैं), वे मोक्ष के मार्ग से विरुद्ध भाव हैं। आहाहा! बन्धभाव तो उसमें गया। यहाँ तो उसे विरुद्ध भाव (रूप से) सिद्ध करना है। वस्तु के स्वरूप से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम चाहिए, उससे ये मिथ्यात्वादि विरुद्ध परिणाम हैं। आहाहा! समझ में आया ?

(मिथ्यात्वादि भावस्वरूप) हैं.. देखा ? तीन गाथाएँ हैं।

सम्मत्तपडिणिबद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठि त्ति णादव्वो।।१६१।।
णाणस्स पडिणिबद्धं अण्णाणं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णादव्वो।।१६२।।
चारित्तपडिणिबद्धं कसायं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णादव्वो।।१६३।।

सम्मत्तपडिणिबद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहियं। आहाहा! देखो! आचार्य सन्त भी भगवान का नाम लेकर कहते हैं। **जिणवरेहि परिकहियं** तीन लोक के नाथ जिनवरदेव

सर्वज्ञ महाविदेह में विराजते हैं, उन्होंने यह कहा है। आहाहा! **तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठि त्ति णादव्वो।** इसमें भी कितनी ही विपरीत गड़बड़ है। तीनों में जिनवर, जिनवर, जिनवर लिखा है। नीचे हरिगीत।

सम्यक्त्वप्रतिबन्धक करम, मिथ्यात्व जिनवर ने कहा।
उसके उदय से जीव मिथ्यात्वी बने यह जानना।।१६१।।
त्यों ज्ञानप्रतिबन्धक करम, अज्ञान जिनवर ने कहा।
उसके उदय से जीव अज्ञानी बने यह जानना।।१६२।।
चारित्रप्रतिबन्धक करम, जिनने कषायों को कहा।
उसके उदय से जीव चारितहीन हो यह जानना।।१६३।।

सम्यक्त्वप्रतिबन्धक करम, मिथ्यात्व जिनवर ने कहा। उसके उदय से.. अर्थात् प्रगट होने से।

टीका : सम्यक्त्व जो कि मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है.. देखा? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन पूर्णानन्द के सन्मुख की प्रतीति, ज्ञान करके होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! जो अनन्त काल में (एक) सेकेण्ड किया नहीं। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ' मुनि हुआ, दिगम्बर हुआ, वस्त्र का टुकड़ा नहीं रखा परन्तु आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शन बिना वह सब भव के भ्रमण का कारण हुआ। आहाहा!

यहाँ क्या कहते हैं? **सम्यक्त्व जो कि मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है..** परिणति, हों! त्रिकाली स्वभाव नहीं। त्रिकाली शुद्ध चैतन्यघन प्रभु है, उसका ज्ञान होकर उसकी निर्विकल्प प्रतीति होना, वह **सम्यक्त्व जो कि मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है..** (अर्थात्) मोक्ष के कारणरूप परिणाम है। आहाहा! अब ऐसी बातें। इसकी अपेक्षा एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, जीविहा तस्स मिच्छामि दुक्कडम् (करो), जाओ! और ओसरे... ताऊकायठायणं, अप्पाणं, वोसरे (करे तो) हो गयी सामायिक! अरे! भगवान! बापू! लोगस्स में 'उज्जोयगरे..' किया। 'विहुय रयमला, पहेण जरमरणा...' इसके अर्थ की खबर नहीं होती। अरे! भाई!

यहाँ तो सम्यक्त्व जो भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द, पुण्य-पाप के

रागरहित है, उसके अनुभव में प्रतीति होना, उसे समकित कहते हैं। आहाहा! वह **सम्यक्त्व जो कि मोक्ष के कारणरूप..** परिणाम **स्वभाव है..** देखा? यह परिणाम की बात है। **उसे रोकनेवाला मिथ्यात्व है;..** भाव, वर्तमान मिथ्यात्व है - ऐसा कहते हैं। समकित से विरुद्ध ऐसा मिथ्यात्वभाव वर्तमान है। चाहिए समकित। त्रिकाली ज्ञायकभाव की प्रतीति अनुभव में (होनी चाहिए) परन्तु उससे विरुद्ध मिथ्यात्व, वह इसके पास है। वह समकित के भाव से विपरीत भाव है। आहाहा! पहले में घातक कहा था। इसमें उससे विपरीत भाव है, ऐसा कहते हैं। बीच में बन्धस्वरूपी (कहा) था।

आहाहा! ऐसा सूक्ष्म मार्ग। व्यापारी को धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती, पूरे दिन पाप! धन्धा.. धन्धा.. धन्धा.. दुकान। निवृत्त होवे तो स्त्री, पुत्र को प्रसन्न रखने जाए। अर र! छह-सात घण्टे नींद में जाए। उसमें यह वस्तु क्या है? वीतराग क्या कहते हैं? इसका निर्णय करने का समय नहीं मिलता। अरे! आहाहा! यह जीवन किसका जीवन? यह जीवन सब पशु जैसा जीवन है। फिर भले करोड़ोंपति और अरबोंपति हो। आहाहा!

यहाँ प्रभु ऐसा कहते हैं कि जो समकित है, वह मोक्ष के कारण (रूप) परिणाम है, उससे मिथ्यात्व, वह विरुद्धभाव है। सम्यग्दर्शन के भाव से मिथ्यात्व (विरुद्ध परिणाम है)। मिथ्यात्व, वह परिणाम है। समकित, वह परिणाम है परन्तु समकित के परिणाम से मिथ्यात्व परिणाम विपरीत है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति यात्रा के भाव मेरे और मुझे लाभ करेंगे, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह समकितभाव से विरुद्ध भाव है। समझ में आया?

बापू! यह पागलपने नहीं कहलाता। भाई! दुनिया पूरी पागल है। आहाहा! अरे रे! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव को क्या कहना है? इस सत्य बात को पागल सिद्ध करते हैं। पागलों की बात को सच्ची सिद्ध करते हैं! आहाहा! प्रभु! एक बार तत्त्वज्ञान तो कर। तत्त्वविचार तो कर, जानपना, तुलना तो कर कि समकित जो है, वह त्रिकाली चैतन्य भगवान प्रभु का ज्ञान होकर उसमें 'यह है' ऐसी प्रतीति होना, ऐसा सम्यग्दर्शन जो मोक्ष का कारण है, उसमें अभी पुण्य के परिणाम मेरे और मुझे लाभ करेंगे, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव है, वह समकित से विरुद्ध भाव है। आहाहा! ऐसी बातें पकड़ना कठिन पड़ती है। आहाहा! है?

वह (मिथ्यात्व) तो स्वयं कर्म ही है,.. (अर्थात्) विकार भाव है। वह समकित

है, वह तो मोक्ष के कारणरूप परिणाम था और उससे यह मिथ्यात्व है, वह परिणाम तो मिथ्यात्वरूपी कर्म-कार्य है, विपरीत श्रद्धा का कार्य है। स्वयं ही एक कर्म है। वह धर्म नहीं तथा आत्मा नहीं। आहाहा!

आहाहा! दो बातें की हैं कि सम्यग्दर्शन जो है, वह आत्मा का जो सम्यग्दर्शन है, वह मोक्ष का कारण है। ऐसा कहा न? अब उससे विरुद्ध जो मिथ्यात्व है, वह विरुद्ध भाव है, वह मिथ्यात्व कार्य है। आहाहा! **उसके उदय से..** अर्थात् उसके प्रगट होने से। विपरीत भाव के प्रगट होने से ज्ञान को मिथ्यादृष्टिपना होता है। वे निमित्त से कर्म ले, परन्तु यहाँ तो विपरीत भाव प्रगट हुआ, उससे वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर की भ्रमणता से?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वयं की है। वह कर्म निमित्त है।

अपनी विपरीत मान्यता के उदय से, प्रगट होने से.. आहाहा! **ज्ञान के मिथ्यादृष्टिपना होता है।** उससे आत्मा को मिथ्यादृष्टिपना होता है। आहाहा! कर्म का उदय है, वह तो जड़ है। जड़ कहीं आत्मा को मिथ्यात्व नहीं कराता। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें उसके उदय से 'ही' लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं का (मिथ्यात्व) स्वभाव विपरीत जड़ है। भावकर्म जड़ है। उसके उदय से अर्थात् उसके प्रगट होने से। आहाहा!

उसके उदय से ही.. अर्थात् मिथ्या श्रद्धा के प्रगट होने से ही **मिथ्यादृष्टिपना होता है।** आहाहा! अब इसमें कितनी बात याद रखना? एक घण्टे में सुनी हुई बात सब दूसरी निकले। अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! मार्ग अलग रह गया, प्रभु! आहाहा! और दूसरे रास्ते चढ़ गया। विपरीत रास्ते चढ़कर हम जैनधर्मी हैं, ऐसा माने! आहाहा!

यह कर्म (अर्थात्) जड़ उदय लेना परन्तु उसे उदय तब कहा जाता है कि यहाँ परिणाम विपरीत किये तो उसे उदय कहा जाता है। नहीं तो वह उदय क्या? वह तो जड़ की पर्याय है। आहाहा! जड़ की पर्याय का चैतन्य को स्पर्श भी नहीं है। भगवान आत्मा तो अरूपी है और जड़कर्म है, वह तो रूपी है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाला है, परन्तु उसके उदय के काल में स्वयं अपने से विपरीत मान्यता करता है, वही उसे रोकनेवाली है।

अर्थात् वही विपरीत भाव है। यहाँ तो विपरीत भाव बताना है न? समकित से विरुद्ध भाव, वह मिथ्यात्व है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है।

पहले तीन गाथा में ऐसा (कहा) था कि समकित को ढाँक देनेवाला है, इसलिए वह कर्म है; पश्चात् मिथ्यात्वादि है, वह भावबन्ध है (ऐसा कहा)। भावबन्ध है, इसलिए अबन्ध (स्वरूप से) भिन्न जाति है। इसमें कहते हैं कि समकितरूपी मोक्ष के कारण से विरुद्ध मिथ्यात्व, वह विपरीत भाव है। कहो, समझ में आया? वजुभाई! ऐसा सब सूक्ष्म है, बापू! धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं की। आहाहा! कोई कहीं शरण नहीं है, प्रभु! आहाहा! कहते हैं कि यह दया, दान (का) राग है, वह शरण नहीं है परन्तु उस राग को अपना माना है, वह मिथ्यात्वभाव, समकित (जो कि) मोक्ष का कारण है, उससे विरुद्ध भाव है। आहाहा! यह तो वीतराग की वाणी है, बापू! यह कहीं कथा-वार्ता नहीं है। तीन लोक के नाथ, जिन्हें इन्द्र सुनने आवें, गणधर सुनने आवें, उसी वन के बाघ और सिंह तथा नाग सुनने आवें। भाई! समवसरण में प्रभु विराजते हैं। यहाँ भगवान थे, तब समवसरण था। वीर प्रभु विराजते थे तब। अभी तो सिद्ध हो गये। आहाहा! बापू! वह वाणी कैसी होगी! एकावतारी इन्द्र सुनने आवें, वह वाणी कैसी होगी! एक भव में मोक्ष जानेवाले, पहला इन्द्र हैं। उनकी इन्द्राणी भी एक भव में मोक्ष जानेवाली है। वे जब प्रभु की सभा में आते हैं। आहाहा! बापू! यह दया पालन करो, व्रत करो, यह तो वह कुम्हार भी कहता है।

कहा नहीं था पहले, हमारे उमराला जन्म गाँव में ७५ वर्ष पहले की बात है (संवत्) १९८०। श्रावण महीना लगे, उस भादव शुक्ल पंचमी तक, जो सेठ हों वे तेली की घानी हो, तेली की! और कुम्हार का आव हो, उनके पास जाते हैं। पाँच सुपारी देते हैं तो वे समझ जाते हैं कि बनियों का पर्यूषण आया है। श्रावण शुक्ल एकम से भाद्र शुक्ल पंचमी (तक) मुसलमान घाणी चलाते नहीं। जन्मगाँव उमराला! सब देखा है न! अब ऐसा तो मुसलमान करते थे। एक महीना और पाँच दिन घाणी नहीं करते। कुम्हार एक महीना और पाँच दिन आव नहीं करता। निभाणो समझते हो? ईंट (बनावे), फिर भी जरा हरीफाई चले। पंचमी के पश्चात् पहले कौन शुरु करता है? क्योंकि पाप है। ऐसा तो वे मुसलमान भी उस समय (समझते थे), वहाँ तेली मुसलमान है, परन्तु ३५ दिन बन्द कर देते हैं। महाजन लोगों का वहाँ जोर था।

हमारे एक 'रुखड़' सेठ था, (वह तो गुजर गया), लड़के मुम्बई में रहते हैं। ऐसे बेचारे साधारण थे परन्तु बहुत खानदानी लोग। पैसा-वैसा बहुत नहीं था। पाँच सुपारी (लेकर) जाए। इसलिए उन्हें ऐसा हो कि ३५ दिन बन्द करना है, घाणी चलाना नहीं है। अब ऐसा तो मुसलमान (भी करते थे) बापू! वीतराग की वाणी कोई अलग है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, समकित जो मोक्ष का कारण... आहाहा! उसे रोकनेवाला वर्तमान विरुद्ध मिथ्यात्वभाव है। यह विरुद्ध भाव बतलाना है। रोकनेवाला उसमें कहा था, वह तो ढाँक देनेवाला (कहा था)। मिथ्यात्व से समकित को ढाँकना और यह घात करनेवाला। और यहाँ कहते हैं कि वर्तमान मिथ्यात्वभाव है। समकित से मिथ्यात्वभाव विरुद्ध भाव है। आहाहा! समझ में आये ऐसा है, हों! भाषा कोई ऐसी (कठिन) नहीं है। बापू! भाव तो क्या करे? प्रभु की वाणी (ऐसी है)। आहाहा! कल गाया नहीं था? प्रभु की वाणी जोर रसाल, सुनने तरसते हैं। आहाहा! आहाहा!

तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं, प्रभु! तेरा पूर्ण स्वरूप सर्वज्ञ सर्वदर्शी, अतीन्द्रिय आनन्द, ऐसी अनन्त शक्ति! एक-एक शक्ति पूर्ण ऐसी अनन्त पूर्ण (शक्तियों का) रूप! उसके सन्मुख होकर अनुभव होना और अनुभव होकर प्रतीति होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। इस सम्यग्दर्शन से विरुद्ध भाव, वह मिथ्यात्व भाव है। आहाहा! सम्यग्दर्शन मोक्ष का कारण और मिथ्यात्व है, वह बन्ध का कारण है। बन्धस्वरूप है, यह तो आ गया, परन्तु यह मिथ्यात्व विपरीत भाव है। आहाहा!

यह हा.. हो.. और यात्रावाले आवे न! यहाँ दर्शन करने आवे परन्तु हा.. हो.. सुनकर (चले जाते हैं)। सुनने-बुनने में कुछ (खबर नहीं पड़ती)। यह पालीताणा यात्रा की और गिरनार यात्रा की, (इसलिए) हो गया धर्म! धूल में भी धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आपसे प्रार्थना करते हैं कि दो मिनिट सुनाओ, दो मिनिट।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वे कहते थे। मैंने कहा, व्याख्यान होवे तब। व्याख्यान सुनो। इस समय यहाँ व्याख्यान रखा था। आहाहा!

स्वयं कर्म ही है,.. उसके प्रगट होने से ही आत्मा को **मिथ्यादृष्टिपना होता है।** आहाहा! पर्याय में मिथ्यादृष्टिपना (होता है)। पुण्य के परिणाम और पाप के परिणाम दोनों

मेरे हैं, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव है, उसका उदय होने से अर्थात् प्रगट होने से। आहाहा! आत्मा को **मिथ्यादृष्टिपना होता है।** ज्ञान को अर्थात् आत्मा को। है?

पहली दो लाईनें। आहाहा! पहली दो लाईनों में मोक्ष का कारण है, ऐसा कहा और मिथ्यात्व है, वह मोक्ष के कारण से विपरीत भाव है, ऐसा कहा। आहाहा! इस पुण्य-परिणाम से मुझे धर्म होगा, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह समकित भाव से विरुद्ध भाव है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म कातना... मार्ग बापू! प्रभु का बहुत अलग प्रकार का है, भाई! आहाहा!

ज्ञान.. शब्द से समझ में आया? ज्ञान अर्थात् आत्मा। उसके प्रगट होने से-विपरीत श्रद्धा होने से आत्मा को **मिथ्यादृष्टिपना होता है।** आहाहा! उसे मिथ्यादृष्टिपना वर्तमान (है वह) सम्यग्दर्शन (जो कि) मोक्ष का कारण है, उससे विपरीत भाव वह मिथ्यादृष्टिपना है, वह विपरीत भाव है। सम्यग्दर्शन, वह मोक्ष के कारण का अविपरीतभाव है और यह मिथ्यात्व है, (वह) आत्मा के मोक्ष के कारण से विपरीत भाव है। और बन्ध के कारणरूप है, बन्धरूप है। यह बात की। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)